

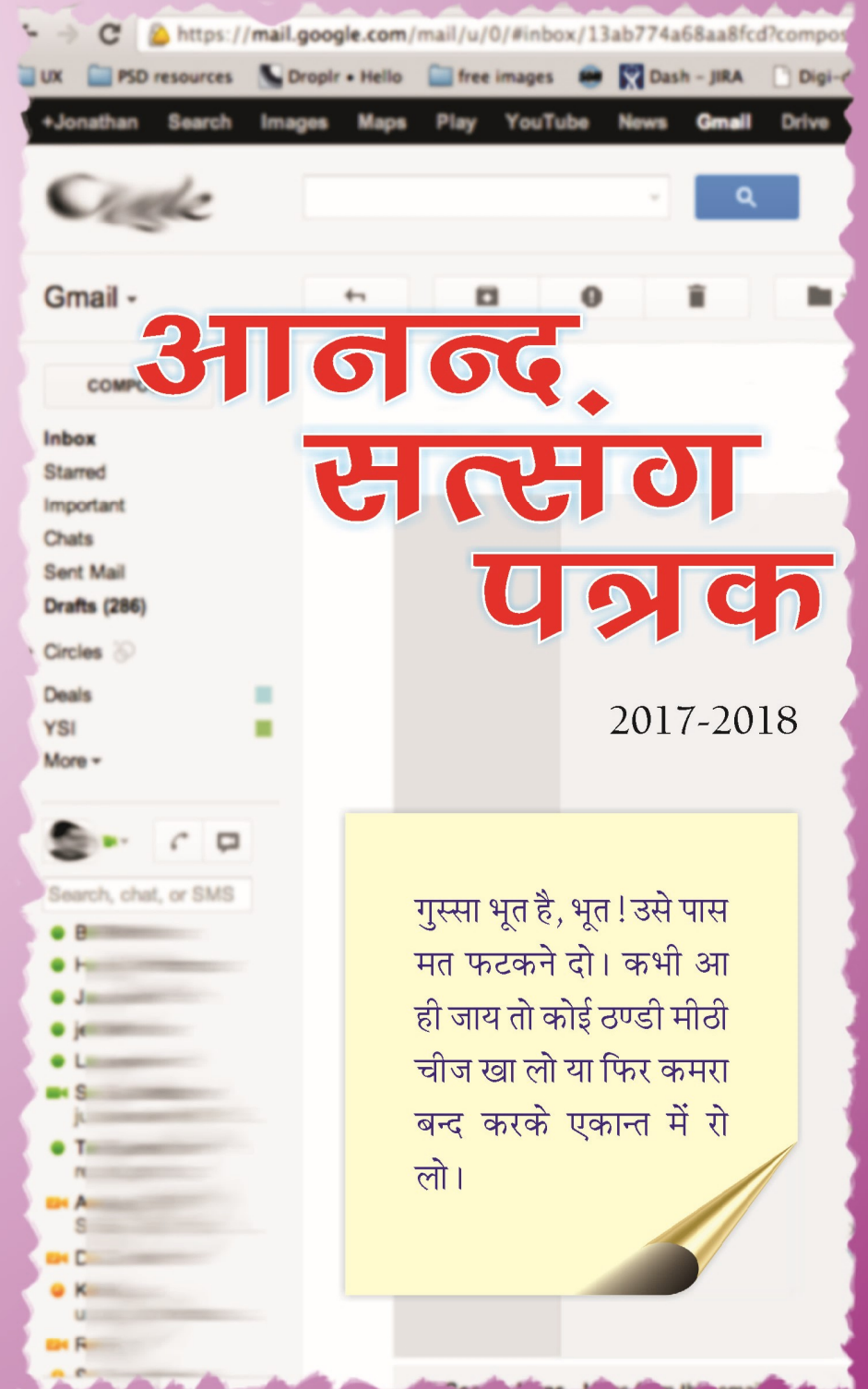


अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज

मानसी पूजा में तन्मयता अधिक होने के लिए केवल प्रेम और सम्बन्ध की गढ़ता मात्र चाहिए। उस समय अपने को भगवान् के धाम में मानना चाहिए। वैसे जो भी क्रिया, वस्तु या भाव अपने इष्टदेव को प्रिय लगता देखे, वही मन ही मन अपने इष्टदेव को अर्पण करना चाहिए।



आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर
वृन्दावन



आनन्द सत्संग पत्रक

(2017-2018)

संकलन
आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर
वृन्दावन

श्रीगुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर
त्वदीय वस्तु गोविन्द !
तुभ्यमेव समर्पयेत् ।



आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर
आनन्द वृन्दावन, वृन्दावन
द्वारा
वितरणार्थ प्रकाशित

मुद्रण-संयोजन
श्रीहरिनाम प्रेस, लोई बाजार, वृन्दावन-281121
दूरध्वनि : 7500987654

शुभाशंसा

“आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर” संस्था पिछले दो वर्षों से परम पूज्य महाराजश्री की गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर “आनन्द सत्सङ्ग पत्रक” का प्रकाशन एवं प्रसाद रूप में वितरण का शुभ कार्य सम्पादन करती रही है।

इस वर्ष की गुरुपूर्णिमा पर परम पूज्य महाराजश्री का यह अलौकिक प्रसाद-“आनन्द सत्सङ्ग पत्रक 2017-2018” आपके हाथों में है। इसमें पूज्य महाराजश्री के 61 चुने हुए उपदेशों का संकलन है। संकलन का श्रेय साध्वी सुश्री कञ्चन जी को है। इनका यह कार्य प्रशंसनीय है।

हमें पाठकों से आशा है कि वे इस ‘पत्रक’ में संकलित परम पूज्य महाराजश्री के उपदेशों को लगन पूर्वक पढ़कर उस पर मनन कर अपने इसी जीवन में आत्मसात कर अपने को सफल एवं धन्य बनावेंगे।

विनयावनत

सच्चिदानन्द

स्वस्त्ययन

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।

अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः॥

(ऋ० मं० १०, सू० ६०, मं० १५)

‘यह मेरा हाथ भगवान् है अर्थात् दुष्कर से दुष्कर कार्य करने में भी समर्थ है। यह मेरा हाथ भगवान् से भी श्रेष्ठ है अर्थात् इन हाथों के द्वारा कर्म करने पर भगवान् को भी फल देने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यह मेरा हाथ विश्व के सम्पूर्ण रोगों का औषध और समस्त समस्याओं का समाधान है। यह मेरा हाथ जिसका स्पर्श कर देता है, वह परम मंगलमय शिव हो जाता है।’



आनन्द सत्संग पत्रक – 1

गुरु पूर्णिमा पर्व पर

जो वेद-विहित पुण्य बल से मिलती है वह अमरता भी एक दिन मर जाती है। अतः यदि आपको असली अमरत्व अभीष्ट है तो गुरुदेव के चरण में शरण ग्रहण कीजिए।



कौन प्राणी आनन्द नहीं चाहता? क्योंकि सभी आनन्द से ही समुत्पन्न हैं एवं प्रतिक्षण आनन्द कण का ही आस्वादन करके जीते हैं, पुनः आनन्द में ही लीन होते हैं। किन्तु आनन्द का अन्वेषण बोध के बिना पूर्णरूपेण असम्भव है और बोध गुरुतत्त्व के आश्रित है। अतः गुरुपादारविन्द ही अशेषार्थ का दाता है।



जैसे शरीर के लिये खिलाने-पिलाने तथा पलंग पर सुलाने आदि की व्यावहारिक क्रियाएँ आवश्यक हैं, उसी प्रकार अपने व्यावहारिक अन्तःकरण को व्यावहारिक परमात्मा से जोड़ो तभी उसकी शुद्धि होगी। परमात्मा का व्यावहारिक रूप गुरुदेव ही हैं।



संसार में संसारी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले तो बहुत हैं, पर हमारे दिल को संसारी इच्छाओं से छुड़ाने वाले एक गुरुदेव ही हैं।



आनन्द सत्संग पत्रक - 2

भाई मेरे, हमारे दिल में जो गन्दगी आयी है, वह देख-देखकर आयी है, सुन-सुनकर आयी है। यदि हम उन अध्यारोपों को छोड़ दें तो हमारे मन में कोई गन्दगी है ही नहीं। यदि आप इसे अध्यारोप नहीं कहना चाहते तो अभ्यास कर लीजिये। एक ही बात है। बिल्कुल बाहर से लाकर थोपी हुई चीज़ है यह गन्दगी! बाहर से लाकर लगायी हुई है यह इल्लत!! आओ, उसको मिटाने के लिए पुण्य-श्रवण करो। वह पुण्य-श्रवण करो, जो हमारे हृदय को पवित्र करने वाला है। मत सुनो भोग की वृद्धि करने वाला चरित्र! वासना की वृद्धि करने वाला चरित्र!! जिससे तुम्हारे हृदय में पक्षपात आता हो, राग आता हो, भाई-भतीजावाद आता हो, पार्टीबन्दी आती हो, वह बात मत सुनो। छोड़ो उस चर्चा को, जिससे दूसरे के प्रति नफरत पैदा होती है, द्वेष उत्पन्न होता है और लोभ की सृष्टि होती है। इसलिए भगवान् के चरित्र सुनो, उनकी गाथा सुनो, उनके नाम सुनो; वही सबमें है, सब जगह है।



बड़ा वही है, जो सबसे छोटों को अपनी गोद में उठा ले। धनी वह है, गरीब को धनी बना दे, अभागों को भाग्यशाली बना दे। विद्वान् वह है, जो मूर्ख को पण्डित बना दे। पुण्यात्मा वही है, जो पतित को पावन बना दे। इसी तरह भगवान् की करुणा सनत् कुमार आदि के उद्धार में नहीं है, वशिष्ठ-विश्वामित्र-नारदादि के उद्धार में नहीं है; भगवान् की करुणा तो अजामिल और कुब्जा के उद्धार में है। यह है भगवान् की करुणा!!



आनन्द सत्संग पत्रक – 3

आनन्द जयन्ती महोत्सव पर

मैं अपनी ओर से आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप चाहे किसी भी परिस्थिति में हों, साधन करते हों, न करते हों—मेरे अपने स्वरूप ही हैं। आपका पन्थ, मत, सम्प्रदाय भले ही पृथक्-पृथक् हो, आप मेरे निज स्वरूप ही हैं। ‘आप’, ‘वह’, ‘तुम’ और ‘मैं’—यह शब्द अलग-अलग हैं, वस्तुतः सब एक ही तत्व के बोधक हैं अपने स्वयं प्रकाश, सर्वाधिष्ठान आत्मदेव से अतिरिक्त दूसरी और कोई वस्तु नहीं है। स्वयं प्रकाश, सर्वावभासक आत्मसत्ता ही सर्वाधिष्ठान अनन्त ब्रह्मसत्ता है।

हाँ, यह जरूर है कि जिज्ञासुओं के पुण्य-परिपाकजनित सद्भाग्य से जब तक तत्त्वज्ञानी जीवन्मुक्त महापुरुष का शरीर विद्यमान रहता है, सहज भाव से उसके शरीर की उपस्थिति से जगत् का कल्याण होता रहता है। उसके दर्शन, आलाप आदि संसार के दुःखी प्राणियों के लिये, परमार्थ-पथ के पथिकों के लिये परम सम्बल हैं। यद्यपि वेदान्त में अपने-आपको भी धन्यवाद देने की प्रथा है ‘धन्योऽहम्’; तथापि मुझे इस शिष्टाचार की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।



आनन्द सत्संग पत्रक - 4

तुम जिस काम में लगे हुए हो क्या वह इतना महत्वपूर्ण है कि उसके लिये परमात्मा का स्मरण छोड़ा जा सके ?



जो काम तुम कर रहे हो, वह भगवान् के लिये ही है न ? नहीं तो क्या तुम स्वार्थ के लिये इतने अन्धे हो गये हो कि मैं कहाँ जा रहा हूँ, यह भी तुम्हें मालूम नहीं ?



तुम्हें कुछ प्रकाश भी दीखता है, अथवा सब अंधकार-ही-अंधकार ? जिनमें तुम उलझे हुए हो, एकबार तटस्थ होकर उन्हें देखो। ऐसा करते ही तुम अपने को उनसे मुक्त पाओगे।



संसार के सारे सम्बन्ध और सम्पूर्ण बन्धन तुम्हारे अपने मनके माने हुए ही हैं। उन्हें चाहे जब तुम तोड़ सकते हो। परन्तु वैसा करते समय यदि तुम भगवान् के साथ जुड़ जाओ तो तुम्हें एक अभूतपूर्व आनन्द की अनुभूति होगी।



आनन्द सत्संग पत्रक – 5

लोग कहते हैं कि हम अपनी अमुक वस्तु को छोड़ें क्यों ? उनसे अनासक्त रहेंगे, बस। पर यह भ्रम है। 'छोड़ें क्यों'—यही तो आसक्ति का स्वरूप है। इसलिये साधना में साधक के जीवन में त्याग की भी आवश्यकता हुआ करती है।



भगवान् दयामय हैं। सम्पूर्ण जगत् पर दया की वर्षा करते हैं। उनकी ओर से किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं है। उसके अनुभव में जो कुछ विलम्ब है वह जीव की ओर से ही है, भगवान् की ओर से नहीं। जीव जिस समय सच्चे दिल से उनकी कृपा का अनुभव करने के लिये उन्मुख हो उसी समय वे अपनी कृपा का अनुभव करा देते हैं। जीव का सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ इसी में है कि वह भगवान् की कृपा का अनुभव करें। इसके लिये किसी विशेष साधना की आवश्यकता नहीं, केवल भाव-भक्ति चाहिये। भगवान् की लीला विचित्र है। वे कब, किस पर क्यों प्रसन्न होते हैं—इसको वे ही जानते हैं। परन्तु, इतना निश्चित है कि वे दया की मूर्ति हैं और जो उनको चाहता है, उसको वे अवश्य मिलते हैं।



आनन्द सत्संग पत्रक – 6

नारायण, भगवान् के धैर्य की भी एक सीमा है। वे अपने प्रेमियों से कब तक छिप सकते हैं! वे सर्वदा, सब जगह, सबके पास ही रहते हैं, केवल प्रकट होने का अवसर ढूँढा करते हैं। जब देखते हैं कि मेरे प्रकट हुए बिना अब काम नहीं चल सकता, तब तत्क्षण प्रकट हो जाते हैं।



भगवान् की सेवा-पूजा से बढ़कर और ऐसा कर्तव्य ही कौन-सा है, जिसके लिए भगवान् के प्रेमी भक्त जीवन धारण करें? उनकी प्रत्येक क्रिया भगवान् के लिए ही होती है और स्वभाव से ही उनके द्वारा जगत् का कल्याण सम्पन्न होता है। ऐसे भक्त एकान्त में रहकर भी, भगवान् की सेवा में ही लगे रहकर भी अपने शुद्ध संकल्प से संसार की जितनी सेवा करते हैं, उतनी सेवा काम में लगे रहकर बड़े-बड़े कर्मनिष्ठ भी नहीं कर सकते।



आनन्द सत्संग पत्रक – 7

‘भगवद्-अवतरण की भूमि’!

एक बार श्रीउड़ियाबाबा जी महाराज से किसी ने ऐसा ही प्रश्न पूछा था कि अधर्म में किसी प्रकार की कमी रही नहीं, वह दुनिया में बढ़ता जा रहा है, फिर भगवान् का अवतार कब होगा ?

आप लोग बुरा न मानें तो मैं अपने मनकी बात कह देता हूँ। अधर्म तो धर्म का भाई है। यह बात केवल मैं नहीं कह रहा, शास्त्रों के अनुसार भी अधर्म का छोटा भाई है धर्म, पहले मनमें अधर्म आता है तो उसको नियन्त्रित करने के लिये धर्म की आवश्यकता होती है। आपने देवासुर-संग्राम का वर्णन सुना होगा। यह देवासुर-संग्राम हमारे भीतर भी चलता रहता है। जब मनोवृत्तियों में परस्पर टकराव होता है, संघर्ष होता है, हम सन्ध्या-वन्दन करें कि सिनेमा देखने जायें कि क्लब में जायें कि सो जायें-यह देवासुर-संग्राम ही तो है।

असल में पहले अधर्म कम था और अब बढ़ गया- ऐसा तो नहीं लगता। हमारे बाप-दादा-परदादा अपने बचपन की बात सुनाकर कहा करते थे कि पहले अधर्म बहुत कम था और अब बढ़ रहा है, हम भी कहते हैं कि हमारे बचपन में बहुत अच्छा था, अब बिगड़ता जा रहा है। शायद मनुष्य के अनुभव की एक प्रक्रिया ही ऐसी है कि वह बीती बातों को बहुत अच्छी और वर्तमान को बहुत बुरी समझने लगता है। लेकिन इसमें सावधान रहने की जरूरत है। हर बात को अधर्म कहकर कोसना,

बुरा बताना, यह उचित नहीं है। जरा देश को भी देखना चाहिये, परिस्थिति को भी देखना चाहिये। इसी तरह काल को, वय को, शक्ति को, शिक्षा को सबको देखकर अधर्म का फतवा देना चाहिये।

तो, जब उड़ियाबाबा जी महाराज से किसी ने पूछा कि अधर्म बहुत बढ़ गया है, भगवान् का अवतार क्यों नहीं होता? तब बाबा तुरन्त बोले कि भाई, अधर्म सचमुच बहुत बढ़ गया है— कंस एक नहीं अनेक हो गये हैं। लेकिन देवकी-वसुदेव नहीं है। यदि कोई देवकी-वसुदेव हो जाय तो भगवान् का अवतार अब भी हो सकता है।

इसलिये भाई मेरे, जब हम भगवान् के बारे में बात करते हैं तब उसके साथ अपने मनका सम्भव-असम्भव नहीं जोड़ना चाहिये। हम जिसको असम्भव समझते हैं, उसको भी ईश्वर सम्भव कर सकता है और जिसको सम्भव समझते हैं, उसको भी असम्भव कर सकता है। इसलिये ईश्वर के बारे में क्या सम्भावना है, क्या असम्भावना है— इसका विचार नहीं करना चाहिये। हाँ, जब हमको अधर्म से दुःख होता है, तब हमें प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्रभु! लोक में, जन-जन में, मन-मन में अधर्म की वृद्धि हो रही है, अधर्म का अभ्युत्थान हो रहा है। उस अभ्युत्थान को शान्त करने के लिये आप स्वयं अवतार लीजिये या किसी सत्पुरुष को भेजिये या अपने संकल्प से मिटाइये। यह प्रतिज्ञा आपकी है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ (गीता 4.7)

प्रार्थना करने का अधिकार तो सबको है ही, कोई भी प्रार्थना कर सकता है।

रही बात भगवान् के अवतार की, सम्भावना की, वह हमारे हृदय में हमेशा ही रहती है। हम कहते हैं कि हे भगवान् अभी प्रकट हो जाओ। यह भी कहते हैं कि भगवान् अभी प्रकट होने वाला है। इसलिये जितनी बढ़िया और जितनी उत्कृष्ट प्रबल सम्भावना आपके मनमें बनेगी उतना ही आपका चित्त पवित्र हो जायेगा और चित्त की पवित्रता ही भगवान् के अवतार की भूमि है।



आनन्द सत्संग पत्रक – 8

भगवान् जानते तो सबकुछ हैं और करते भी सबकुछ ही हैं; लोग उनके विधान पर निर्भर नहीं रह पाते, इसी से कुछ कहने या सोचने लगते हैं।



भगवान् केवल नियम-पालन से ही प्रसन्न नहीं होते, उनके लिए और भी कुछ आवश्यक है और वह है— भाव-भक्ति, प्रेम और आत्म-समर्पण।



ध्यान तो बहुत-से लोग करते हैं, परन्तु वे तो कुछ समय तक कर्त्तव्य-पालन के लिए ध्यान करते हैं। इसी से वे अपने अन्तर्देश में प्रवेश नहीं कर पाते, क्योंकि ध्यान के बाद के लिए बहुत-सी वासनाओं को वे सुरक्षित रखे रहते हैं।



आनन्द सत्संग पत्रक – 9

देखो, हमको जो यह बुद्धि मिली है ईश्वर की ओर से, वह दुःख को भगाने के लिए मिली है, दुःख को बुलाने के लिए नहीं मिली है। जो आदमी अपनी अक्लमंदी का उपयोग दुःख बुलाने में करता है, उसकी अक्ल ठीक काम नहीं करेगी।

बुद्धि मिली है तो,

पहली बात है दुःख से बचो।

बीते हुए की याद में अपने वर्तमान को न बिगाड़ो। नारायण, अनहुए की कल्पना और बीते हुए की स्मृति—दोनों वर्तमान को बिगाड़ती हैं।



कोई भी काम करना हो, सोच-विचारकर करना चाहिए। एकाएक आवेश में आकर या दुस्साहस नहीं करना चाहिए। संस्कृत में साहस माने अपराध होता है। कोई बहुत साहस का काम करे तो उसको द्विगुणित दण्ड दिया जाता है। जो विचार करके काम करता है, उसके गुण पर लुभा करके सम्पत्तियाँ स्वयं आती हैं। भारवि का वचन है—

सहसा विदधीत न क्रियां अविवेकः परमापदां पदम्।

वृणुते हि विमृश्यकारिणम् गुणलुब्धा स्वयमेव सम्पदः ॥



आनन्द सत्संग पत्रक – 10

देखो! जीवन में दुःख के निमित्त आते ही रहते हैं। मन में दुःखाकार वृत्ति भी बन सकती है। परन्तु, यदि 'मैं दुःखी हूँ'—यह अभिमान न हो, तो आपके भीतर दुःख का प्रवेश नहीं होगा।

'मैं दुःखी हूँ'—यह अभिमान केवल बेवकूफी से होता है। अतः समझदारी से दुःख का अभिमान निवृत्त भी होता है। हाँ, एक बात है—यदि आपके हृदय में भगवान् विराजमान रहेंगे, भगवान् की भक्ति रहेगी, भगवदाकार-वृत्ति रहेगी, तो आपके हृदय के भीतर दुःख का प्रवेश ही नहीं होगा। यदि आपके जीवन में प्रार्थना होगी और प्रार्थना के फलस्वरूप आपके हृदय में प्रेम सहित भगवान् का स्मरण होगा, तो भला बताओ आपके भीतर दुःख कैसे घुसेगा? आपकी भगवदाकार-वृत्ति दुःख को भीतर घुसने ही नहीं देगी!



आनन्द सत्संग पत्रक – 11

सेवा प्रेम की अभिव्यक्ति है। प्रेम यदि निराकार है तो सेवा उसका साकार रूप है। माने प्रेम परिपक्व होकर सेवा के रूप में आया है, ऐसा भी कह सकते हैं और सेवा का बीज प्रेम ही है, ऐसा भी कह सकते हैं। प्रेम माने तृप्ति। प्रेम माने प्यास। यदि तृप्ति नहीं होगी तो पुरुषार्थ नहीं होगा, कोई उसे चाहेगा नहीं और यदि प्यास नहीं होगी तो प्रेम और बढ़ेगा नहीं। इसलिए प्रेम की प्यास भी बढ़नी चाहिये और तृप्ति भी बढ़नी चाहिये। प्रेम एक ऐसा अद्भुत तत्त्व है, जहाँ प्यास में भी तृप्ति है और तृप्ति में भी प्यास है। और, यह तृप्ति और प्यास पूर्णता को तभी प्राप्त होती है, जब जिससे हमारी प्रीति है, प्रेम है, उसकी सेवा करें।

तो नारायण, वस्तुतः प्रीति करने योग्य एक परिपूर्ण परमेश्वर के सिवाय दूसरा और कोई नहीं है। यह जो हम छिट-पुट इधर-उधर दिल फेंक देते हैं और दूसरे का दिल लेने की कोशिश करते हैं, यह सब बिलकुल झूठ है, कपट है, माया-मात्र है। न किसी को आप अपना दिल दे सकेंगे और न किसी का दिल आपको मिलेगा। इसलिए, भगवद्-सेवा का रस अपने जीवन में आने दीजिये। प्यास भी बढ़े और तृप्ति भी बढ़े!



आनन्द सत्संग पत्रक - 12

भगवान् की प्रसन्नता के लिये तीन बातों को धारण करना चाहिये-

1. दुःखी प्राणियों पर दया ।
2. भगवान् जैसे रखें, उसी में खुश रहना ।
3. अपने मन और इन्द्रियों को शान्त रखना ।

अपना शरीर, कर्म, प्राण, प्रमाण, अपना आपा ईश्वर में डुबो देना ही समधि है।

चित्त की एकाग्रता चित्त को दफना देना-

‘जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।’

मृत्यु के चार रास्ते हैं-आलस्य, अन्न, दोष, सदाचार का त्याग और स्वाध्याय का त्याग ।

मुक्ति के चार द्वारपाल हैं-सत्सङ्ग, सन्तोष, विचार और शम अर्थात् मनकी शान्ति । इन चारों से प्रेम जोड़ने पर मुक्ति के दरवाजे में प्रवेश मिलता है।



आनन्द सत्संग पत्रक – 13

प्रेम गा-गाकर सुनाने की वस्तु नहीं है। यदि वह हो तो उसे हृदय में ही पचाना अच्छा रहता है। उससे एक ऐसी शक्ति पैदा होती है जो प्रियतम प्रभु को अपनी ओर खींच लाती है।



देखो, सत्य सत्य-ही है; क्रिया, भावना, स्थिति से उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। अन्तर तो ज्ञान-अज्ञान से भी नहीं पड़ता; परन्तु आत्मतुष्टि की दृष्टि से ज्ञान का उपयोग है। आखिर शोक, मोह, भय, विकार आदि में भी जीवन-रथ बेरोक-टोक चलता ही रहता है। यह चलना क्या अबाध और एकरस नहीं है?



मैं अपने को क्या भूला या क्या जाना यह किसे सुनाऊँ?
भूला अपनी मस्ती में फिर जाना तो क्या खुशी मनाऊँ?
भले भूल जाऊँ या जानूँ पर मैं तो ज्यों-का-त्यों ही हूँ।
मृत्यु-अमृत के अनृत सन्धि-कौशल का कारीगर यों ही हूँ।



आनन्द सत्संग पत्रक – 14

बुद्धि में तीन बातों का रहना आवश्यक है-

1. तत्काल निर्णय की शक्ति,
2. मन-इन्द्रियों का नियंत्रण,
3. दृढ़ता।

परन्तु ये तीनों तब रहते हैं, जब बुद्धि बलवती होती है। यह बल कहाँ से आता है? प्रेम से। प्रेम ही बुद्धि को रस देता है, जिससे वह बलवती होती है।



अपने मन की प्रधानता रखने की बात दुःख की जननी है। अपनी जिद्द छोड़ने की आदत डालनी चाहिये। फिर कभी रोना नहीं पड़ेगा।



मन का निरोध करो, विरोध नहीं। निरोध से शान्ति आती है, विरोध दुःख का जनक है। निरोध होता है अभ्यास और वैराग्य से।



एक महात्मा ने मुझे साधन बतलाया। मैंने कहा कि यह तो मेरे लिये बड़ा कठिन है। वे बोले-‘कठिन’ और ‘सुगम’ शब्द तो आलसी व्यक्ति के लिये हैं। तुम तो युवक हो, जिज्ञासु हो- ‘युवा आशिष्ठो द्रढिष्ठः’ इसलिये निरुत्साह मत होओ!



आनन्द सत्संग पत्रक – 15

शरदपूर्णिमा के अवसर पर-

श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीवल्लभाचार्य जी- दोनों ने बताया कि दुनिया में जो डूब रहे हैं, उनको वहाँ से निकालना-यह रास-लीला का प्रयोजन है। भूल जाओ-दुनिया है नहीं। यह तो मनकी चंचलता है, एक मनकी कल्पना है। यदि कल्पना वहाँ से हटी और भगवान् में लग गयी तो प्रपंच विस्मरण होगा और भगवान् में आसक्ति हो गयी तो मन उसमें तन्मय हो गया। आप उस मनको तो देखिये, कितना शक्तिशाली है, कितना वैराग्यवान् है, कितना आनन्दरूप है, जिसमें भूल गया प्रपंच और परमात्मा में तन्मय हो गये।

नारायण, अब यहाँ न काम है, न भोग है, न कर्ता है, न भोक्ता है, न प्रेमी है, न प्रियतम है, न प्रेम है। यह तो रसाद्वैत है। प्रेमाद्वैत है। सिद्धद्वैत है। यदि इसमें सचमुच डूब जाओ तो देखो, बस, यह देखो श्याम, यह देखो श्याम, श्याम-ही-श्याम!



आनन्द सत्संग पत्रक – 16

एकबार मैंने एक महात्मा से पूछा-‘स्वामीजी! महात्माओं को कैसे पहचानें? स्वामीजी ने दो-तीन मिनट रुक हँसकर उत्तर दिया-‘सभी महात्मा हैं, सभी त्यागी हैं। सन्देह न करो! अपने अन्दर का दोष ही महात्मा को पहचानने नहीं देता। निर्दोष बनो! सब निर्दोष हैं-सभी महात्मा हैं। एक बात और! जब महात्माओं के लिये व्याकुलता होगी, तब तुम्हारे पास स्वयं महात्मा पहुँच जायेंगे।



किसी भी क्रिया का नाम ज्ञान, ध्यान, भक्ति नहीं है। यह हृदय का भाव है। शत-शत प्रयत्न करने पर भी न हो, किसी को स्वयं हो जाये। शीतलता रहे, क्षोभ न हो। सब वस्तु, क्रिया, व्यक्ति आदि में भलाई ही दीखे। रौद्र, भयंकर, वीभत्स भी रस ही हैं; केवल भाव की अपेक्षा है-सावधानी के साथ। परमात्मा के सिवा और कुछ नहीं। बाह्य जगत और शरीर की सुन्दरता की अपेक्षा हृदय की सुन्दरता मूल्यवान है। वह कभी नष्ट नहीं होनी चाहिये।



आनन्द सत्संग पत्रक – 17

दीपावली पर्व पर

अपने-आप के प्रति मर जाना, जिससे पुरुष सच्चा जीवन प्राप्त करे, आध्यात्मिक जीवन का ध्येय है। माया की चकाचौंध से ही सन्तुष्ट रहकर बहुत लोग सूर्य-दर्शन में असफल होते हैं। इसे याद रखो कि वास्तविक अमरत्व केवल स्वार्थमय व्यक्तित्व को पूर्णतया नष्ट करने से ही प्राप्त हो सकता है। अव्यक्त के ऊपर अपने मनको स्थिर करो। यह महान् का प्रकाश है जो कि आत्मविजयी व्यक्तित्व के द्वारा ही प्रकाशित होता है। वह प्रकाश जब पूरा चमकता है, तब निर्वाण की ज्योति प्रकट होती है।



आज दीपावली है। दीपों की तैयारी हो रही है। कहते हैं-आज एक भक्तराज बलि, अपने हृदय में भगवान् को लेकर संसार देखने आते हैं। शायद हमारे हृदय में कूड़ा-कर्कट निकल जाने पर, ज्ञानदीप का प्रकाश होने पर, कोई भक्त भगवान् से भरे हुए आयें-इसी अभिलाषा, उत्कण्ठा के साथ शुभ दीपावली!!



आनन्द सत्संग पत्रक – 18

1. दुश्चरित्रता में रति ।
2. मन में काम-क्रोधादि दोषों का होना ।
3. चित्त की चंचलता ।
4. फल अथवा सिद्धि की इच्छा ।

इन चार कक्षाओं को पार किये बिना, केवल ज्ञान से परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। पूर्व-पूर्व की निवृत्ति होने पर भी उत्तर-उत्तर दोष की स्थिति सम्भव है। इसलिए चारों की निवृत्ति होने पर ही उच्चकोटि का ज्ञान अविद्या निवृत्ति के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति में समर्थ होता है।



अधिकार = योग्यता+आकांक्षा। किसी भी वस्तु की आकांक्षा और योग्यता रखने वाला ही उसका अधिकारी है। आजकल लोग अधिकार का हक के रूप में प्रयोग करते हैं; परन्तु अधिकार का शास्त्रीय अर्थ उपरोक्त ही है। इसीलिए परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति का अभिलाषी और उसकी योग्यता अर्थात् साधनचतुष्टय से सम्पन्न व्यक्ति ही उसका वास्तविक अधिकारी है।



आनन्द सत्संग पत्रक - 19

जीवों को उनके कार्य के अनुसार फल देने के लिए ब्रह्मा ने आह को कुमारी बनाकर मर्त्यलोक में भेजा। उसे देखकर सब डर गये। किसी ने भी स्वीकार नहीं किया। रोती-कलपती आह पितामह के पास लौट आई। ब्रह्मा जी ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा-‘बेटी, तुम खुले मुख गई थीं, इससे किसी ने तुम्हें स्वीकार नहीं किया। लो, यह ‘च’ कार का चादर अपने मुख पर डाल लो अब जाओ।’ बड़े प्रेम से ‘चकार’ का झीना आवरण डाले बनी-सँवरी आह जीव के पास आयी और वह मुग्ध हो गया उसपर। जीव चाह में फँस कर ‘आह-आह’ करने लगा।



परमार्थतः सब भगवत्स्वरूप है। किसी वस्तु में कोई परिवर्तन तो करना है नहीं। यह सारा पसारा भाव का है, सो भाव ही सुधारना है। पत्थर का टुकड़ा पत्थर न दीखे, शिव दीखे; क्योंकि वह शिव ही है। मन सब में रस ही देखे। मस्त रहे। मनका सुधार ही साधन है। क्रिया-शुद्धि के लिये मनःशुद्धि नहीं, मनःशुद्धि के लिये क्रियाशुद्धि है। मनःशुद्धि साध्य है, क्रिया साधन। कुछ भी करो, अच्छी नीयत से। ईमानदारी के लिये सावधान। बहानेबाजी का प्रवेश न होने पाये। तुम सत्य, पवित्र सुख का अनुसन्धान करो। कहीं अपने राग को ही सत्य-दर्शन मत समझ बैठो। तुम स्वयं सत्य, पवित्र एवं सुख हो जाओगे। वास्तव में तुम वही हो। क्या तुम्हें पवित्र होने की उत्सुकता है? जो क्रिया, वस्तु, भाव, गुण तुम्हें अपवित्र जान पड़ें, उनका परित्याग करो। त्याग करते-करते परम पवित्र रूप में केवल तुम्हीं बचे रहोगे।



आनन्द सत्संग पत्रक – 20

आराधन महोत्सव : प्रथम दिवस

कल्पना कीजिये कि एक सर्प ऊपर से गिरा। क्या अब आप यह सोचेंगे कि यह कहाँ से, क्यों गिरा? या उसे शीघ्र वहाँ से हटा देंगे? बात भी ऐसी ही है। संसार सर्प का एकार्थक शब्द है—संसरणात् संसारः, सर्पणात् सर्पः। इसकी उत्पत्ति की उपपत्ति लगाना व्यर्थ है। इसी से सांख्यदर्शन के प्रणेता ने अन्त में कहा है—‘यद् वा तद् वा तदुच्छिन्तिः पुरुषार्थः’; चाहे जो हो, उसका उच्छेद माने आत्यन्तिक सत्तानाश कर डालना ही पुरुषार्थ है। इसी से गुरु ब्रह्मा को पहले समझाता है—‘प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म’; इसके समझाने पर कहता है—‘तत्त्वमसि’!

बस, गुरुदेव की दीक्षा यहीं समाप्त हो जाती है और शिष्य का श्रवण भी। अब मनन की बारी आती है; शिष्य सोचता है—‘अयमात्मा ब्रह्म’ और निदिध्यासन करता है—‘अहं ब्रह्मास्मि’!

मनन और निदिध्यासन अपना काम है। यह सर्वथा अपने पुरुषार्थ-प्रत्यन्त पर निर्भर है और यही स्वरूप-साक्षात्कार के प्रतिबन्ध निवृत्ति का साक्षात् उपाय है।



आनन्द सत्संग पत्रक – 21

आराधन महोत्सव : द्वितीय दिवस

जीव के विशाल जीवन में यह शरीर और इससे सम्बन्ध रखने वाली वस्तुएँ उतना भी महत्त्व नहीं रखतीं, जितना कि हम क्षणभर के मनोराज्य या स्वप्न में विभिन्न दृश्यों का महत्त्व अनुभव कर आते हैं। जीवन की स्थूल घटनायें फुहियों के समान बिखर रही हैं, मानसिक जीवन लहरों के समान चंचल है; तब भी तुम समुद्र के अतल गर्भ में स्थित स्थिरता के समान स्थिर, धीर, गम्भीर, अक्षुब्ध हो। तुम फुहियों के साथ उड़ो मत, लहरों से टकराओ मत, सबके भीतर, सबसे अलग, सबके साक्षी, सबसे आँखें बन्द करके आत्म-सत्ता में, अनन्त शान्ति में स्थित हो जाओ। संसार की सत्यता असत्यता का निर्णय विचारकों का कर्तव्य है, ध्याननिष्ठों का नहीं। इतना जानना काफी है कि यह एक उपेक्षा करने योग्य वस्तु है। विचार भी एक विक्षेप ही है जो प्रारम्भ में आवश्यक और उपयोगी होने पर भी अन्त में त्याज्य है। तुम शारीरिक, मानसिक जीवन की हलचलों से ऊपर उठकर देखो तो अनुभव करोगे कि जिसका मैं निर्माण करना चाहता था वह तो पहले से ही है और उससे भी ठोस है, निर्विकार एकरस है। यदि तुम्हारा विश्वास किसी अज्ञात वस्तु पर नहीं, सत्य पर है-अनुभूति पर है तो यह केवल विश्वास ही नहीं बोध भी है। कदाचित् विश्वास नहीं भी रहे-तुम्हारी स्थिति ज्यों-की-त्यों रहेगी।



आनन्द सत्संग पत्रक - 22

आराधन महोत्सव : तृतीय दिवस

यह सब सुख-दुःख चित्त का ही खेल है। मालूम तो सब पड़ता है; परन्तु क्या है-क्या नहीं; कुछ कहा नहीं जा सकता। जो-जो मालूम पड़ता है उसे शान्ति के साथ देखो! केवल अनुभूति एवं प्रतीति को ही नहीं, उनके कर्त्ता को भी। एक प्रतीति से बँधो मत। प्रतीतियाँ बदलती रहती हैं-तुम एक हो, न उन्हें चाहे न हटाओ। तटस्थ रहो, शान्त रहो, द्रष्टा रहो। तब तुम्हें भागने वाले विचित्र दृश्य प्रलोभित या दुःखी न कर सकेंगे।

वस्तुतः ये बातें उन्हीं के लिये हैं जो स्थूल शरीर सम्बन्धी व्यक्तित्व के बन्धन में जकड़े हुए हैं। तुम्हारे शुद्ध, सहज, शान्तिमय, निःसंकल्प स्वरूप की दृष्टि से इनका कोई महत्त्व नहीं है। मूल को देखो-सब दीख जायेगा। मन को लौटने दो। गम्भीरता एवं पवित्रता में उसे डूब जाने दो। परिश्रम मत करो। देखो!



आनन्द सत्संग पत्रक – 23

आराधन महोत्सव : चतुर्थ दिवस

शान्ति किसी अभ्यास से नहीं आती। समस्त कृत्रिम-अकृत्रिम अभ्यासों की तह में जो तुम्हारी एकरस सहज स्थिति है वह शान्त है। यदि तुम अपने सहज स्वरूप को देख सको, जो समस्त संकल्प-विकल्प, वृत्तियों एवं प्रतीतियों के मूल में रहता है, तो जान सकोगे कि शारीरिक एवं मानसिक चहल-पहल तथा उथल-पुथल अत्यन्त स्थूल है। उन्होंने कभी तुम्हारा स्पर्श नहीं किया है, यद्यपि तुम हमेशा उनके कारण अपने को प्रभावित देखते रहे हो। देखो और केवल देखो! सटो मत, हटो मत, जानो मत, अनजान मत रहो!



वस्तुतः आध्यात्मिक क्षेत्र में चमत्कारों को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। जन्म से हम बाह्य वस्तुओं को ही श्रेष्ठ मानते आये हैं। इसलिये यह संस्कार इतना प्रबल हो गया है कि और तो क्या स्वयं भगवान् को भी बहिर्दृष्टि से बाह्य-वस्तुओं के समान ही देखना चाहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वे दीखते हैं, परन्तु वे तो अन्तर की वस्तु हैं-हृदय के धन हैं। उन्हें जितना अधिक हृदय के अन्तर्देश में अनुभव किया जाय उतना ही अधिक सान्निध्य और सत्यता है। ठोस अनुभव आत्मा का है न कि शरीर का। आँखों से दर्शन होने पर भी उसका आनन्द, रस, विश्वास और सर्वदा के

लिये आत्मसमर्पण हृदय में ही होते हैं। नारायण! अनुभूति और स्मृति हृदय की वस्तु हैं। शान्ति भीतर खींचती है-बाहर नहीं भगाती। बाह्य-दर्शन भी अन्तर्मुखता का साधन ही है। परन्तु यदि बिना दर्शन के ही कोई अन्तर्मुख हो रहा हो तो उसे बाह्य-दर्शन की इच्छा करके बहिर्मुख नहीं होना चाहिये।



आनन्द सत्संग पत्रक – 24

आराधन महोत्सव : पंचम दिवस

नारायण, बाह्य-दर्शन होता है और उसका महत्त्व भी कम नहीं है; परन्तु उसकी साधना है भजन में निष्ठा होना। दर्शन तो कुछ क्षणों की वस्तु है। निष्ठा सर्वदा के लिये दर्शन के पूर्व और पश्चात् भी आवश्यक है। वह भावना कितनी दृढ़ है जो अपने इष्टदेव को मूर्तिमान् करके दिखा देती है! भक्त उसे अपनी भावना नहीं, भगवान् की कृपा मानते हैं। प्रेम न हो, निष्ठा न हो, अन्तर्मुखता न हो तो दर्शन भी अधिक महत्त्व का नहीं। रामायण और महाभारतकाल में हजारों ने दर्शन किये, शत्रु भी रहे; क्या उन्हें भगवदानन्द का अनुभव होता था? दर्शन के पूर्व प्रीति न हो तो सुख नहीं। प्रीति है-उनके लिये सबकुछ न्योछावर कर देना। निष्ठा है उसकी तैयारी। बिना देखे पूर्ण विश्वास बहादुर का काम है। शान्ति ही सबका लक्ष्य है-फल है। चित्तवृत्तियों को मोड़ो-उन्हें एक स्थान पर लौटाओ। दीपक की तरह उन्हें बुझ जाने दो-शान्त होने दो।



आनन्द सत्संग पत्रक – 25

आराधन महोत्सव : षष्ठ दिवस

गुस्सा भूत है, भूत! उसे पास मत फटकने दो। कभी आ ही जाय तो कोई ठण्डी मीठी चीज खा लो या फिर कमरा बन्द करके एकान्त में रो लो।



अग्नि को आश्रयाश कहते हैं। जिस लकड़ी को वह पकड़ती है पहले उसी को जलाती है। इसी प्रकार क्रोध जिसे आता है पहले उसी को जलन होती है। दूसरों पर तो केवल चिंगारी ही पड़ती है।



मन में क्रोध आता हो तो ले जाओ अपने मन को वहाँ, जहाँ नारायण शयन कर रहे हैं, लक्ष्मी जी पैर दबा रही हैं और भृगु जी पहुँच कर एक लात नारायण की छाती पर मार देते हैं और नारायण कहते हैं, 'मेरी छाती कठोर है और आपके चरण-कोमल, कहीं चोट तो नहीं लगी?'



जिसके हृदय में किसी के प्रति भी ईर्ष्या, क्रोध है, उसे ईश्वर की प्राप्ति कभी भी नहीं हो सकती। शुद्ध हृदय में भगवान् बसते हैं- 'निर्मल मन जन सो मोहिं पावा।'



आनन्द सत्संग पत्रक – 26

आराधन महोत्सव : सप्तम दिवस

सुख सभी को इष्ट है। ऐसा सुख जो अविनाशी है, सर्वत्र है, सर्वदा है तथा जिसके लिए किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है, जो पराधीन नहीं है। तब वह सुख अपने में ही है। मैं ही सुखरूप हूँ। यही सुख जो अविनाशी, सर्वव्यापक, स्वतंत्र, अनायास, और ज्ञात है, इष्ट है। यही परमेश्वर है। इसे आस्तिक, नास्तिक, धर्मी, विधर्मी— सभी चाहते हैं; क्योंकि मूलतः लक्ष्य सभी का एक है। यह अज्ञात होता है, तब इसका नाम परोक्ष परमेश्वर होता है। वस्तुतः यह अनुभव स्वरूप आत्मा ही है।



सत्य सर्वदा सरल होता है। उसमें दाव-पेंच नहीं होते। चेष्टा सत्य की प्राप्ति के लिए नहीं, असत्य के त्याग के लिये करनी चाहिये।



आनन्द सत्संग पत्रक – 27

आराधन महोत्सव : अष्टम दिवस

सबसे श्रेष्ठ साधक वह है, जिसके जीवन में केवल एक ही इच्छा है—जिसकी दृष्टि अपनी इष्ट वस्तु पर हो। दूसरे नम्बर का साधक वह है, जो अपनी एक इच्छा के लिये सम्पूर्ण इच्छाओं की बलि देने को तैयार रहता है। वह तो विषयी है, जिसके जीवन में एक से अधिक इच्छाएँ हैं। जीवन में जो कभी-कभी विक्षेप, क्षोभ के दर्शन हुआ करते हैं, वे इन्हीं इच्छाओं की खींचातानी के फल हैं। जब आप अनावश्यक इच्छाओं से परहेज करने लगोगे, तब आप जान सकोगे कि निन्यानवे प्रतिशत इच्छाएँ अनावश्यक हैं। वही सिद्ध जीवन है, जिसमें इच्छाओं की तो बात ही क्या, कोई आवश्यकता ही नहीं है। जबकि तुम्हें एक बहुमूल्य वस्तु प्राप्त है, वह तुम्हें छोड़कर कभी नहीं जाती, तब तुम क्षणिक अनुभवों के लिये अपनी निःसंकल्पता, शान्ति क्यों भंग करते हो? बोध स्मृति और विस्मृति—दोनों से विलक्षण है। हमें हमारी मनुष्यता का बोध कितना दृढ़ है कि न तो इसे स्मरण रखना पड़ता है और न तो इसके विस्मरण से हमारा मनुष्यत्व खो ही जाता है। क्या हमारे हृदय में परमात्मा की उपस्थिति मनुष्यत्व से भी न्यून है? वह वज्र से भी कठोर और आकाश से भी अचल है। परमात्मा हमारे हृदय से कभी दूर नहीं हो सकता।



आनन्द सत्संग पत्रक – 28

मानसी पूजा में तन्मयता अधिक होने के लिये केवल प्रेम और सम्बन्ध की गाढ़ता मात्र चाहिये। उस समय अपने को भगवान् के धाम में मानना चाहिये। वैसे जो भी क्रिया, वस्तु या भाव अपने इष्टदेव को प्रिय लगता दीखे, वही मन-ही-मन अपने इष्टदेव को अर्पण करना चाहिये। जैसे लौकिक व्यवहार में पति-पत्नी अथवा प्रिया-प्रियतम एक दूसरे में तन-मन मिलाकर रखते हैं, रहते हैं, खाते-पीते हैं, ठीक वैसे ही मन में इष्टदेव की मानसी पूजा करनी चाहिये। यदि मानसी पूजा में इष्टदेव के सम्बन्ध में ऐसा भाव बने कि जैसे मैं अपने प्रभु के दर्शन और प्रेम का प्यासा हूँ, वैसे ही मेरे प्रभु भी मुझसे प्रेम करते हैं, मुझसे कई गुना अधिक करते हैं। वह देखो, बाँहें फैलाये, प्यासी चितवन से देखते हुए, अपने हृदय में छिप जाने के लिये इंगित कर रहे हैं, उनके हृदय में तड़प और छटपटी है, उनका रोम-रोम मुझे प्रणय-आमंत्रण दे रहा है, उनकी आँखों में प्रेम की मस्ती है, वे प्रेम के आनन्द में मग्न हैं-इत्यादि तो अवश्य ही अपने इष्टदेव में तन्मयता बढ़ेगी। भक्ति-भाव का 'यह स्वभाव ही है कि वह अपने प्रभु का वात्सल्य अनुभव करने से बढ़ता है।



आनन्द सत्संग पत्रक - 29

गीता जयन्ती पर

हमको एक महात्मा ने कान में एक मंत्र दिया था और हम आपको भरी सभा में बता रहे हैं। उन्होंने बताया था कि, यदि ईश्वर सब है तो उसकी प्राप्ति का साधन भी सब है। जो सब जगह रहता है वह सबसे मिलता है, सबको मिलता है, सब समय मिलता है, सब जगह मिलता है। अगर तुम्हारी साधना में इसका समावेश नहीं है तो तुम फिर ईश्वर को काट-पीट कर अलग फेंक रहे हो। विवेक करना दूसरी बात है और ईश्वर को व्यवहार में-से निकालकर बाहर फेंक देना, दूसरी बात है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण का उद्घोष है-

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

ये जो महाराज गुफा में ईश्वर को रखने वाले लोग हैं-समाधि में ले जाकर रखने वाले हैं और यह द्वैत-ही-द्वैत जिनको दिखाई पड़ता है-वे तो ईश्वर की पूर्णता के विरोधी हैं, अद्वैत के विरोधी हैं।

एकबार मैं कोई जप कर रहा था। तो, इष्टदेवता का क्या पता चले? रात को मैं गङ्गा किनारे-किनारे घर के लिये जा रहा था, तो सोचा कि चलो गङ्गा-स्नान कर लें। तैरना आता नहीं था-सो बहाव अधिक था, डूबने लगा। जब डूबने लगा तो ऐसा लगा कि पीछे से हमारी गर्दन किसी ने पकड़ी और बड़े जोर से ले जाकर किनारे पर फेंक दिया। ऐसा

विश्वास बढ़ा कि हम जो जप कर रहे हैं, जिसका ध्यान कर रहे हैं-वह हमारा इष्टदेव है; वह रण में, वन में, अकेले में, जहाँ हमारा कोई रक्षक नहीं है, वहाँ हमारे साथ रहता है और हमको संकट में पड़ा देखकर हमारी रक्षा करता है। सोचो, कितना विश्वास इससे दृढ़ होता है।



आनन्द सत्संग पत्रक – 30

तुम जिस काम में लगे हुए हो क्या वह इतना महत्वपूर्ण है कि उसके लिये परमात्मा का स्मरण छोड़ा जा सके।



जो काम तुम कर रहे हो, वह भगवान् के लिये ही है न? नहीं तो क्या तुम स्वार्थ के लिये इतने अन्धे हो गये हो कि मैं कहाँ जा रहा हूँ, यह भी तुम्हें मालूम नहीं?



तुम्हें कुछ प्रकाश भी दीखता है, अथवा सब अन्धकार-ही-अन्धकार? जिनमें तुम उलझे हुए हो, एकबार तटस्थ होकर उन्हें देखो। ऐसा करते ही तुम अपने को उनसे मुक्त पाओगे।



यदि चित्त में निराशा होती है, मन चंचल रहता है, तुम जो कुछ करना चाहते हो वह नहीं कर पाते, तो पूरी शक्ति लगाकर परमात्मा को पुकारो। तुम्हें तत्क्षण सहायता मिलेगी, तुम्हारे मन-प्राण में एक नवीन चेतना का प्रवाह होने लगेगा और तुम अद्भुत उत्साह तथा स्फूर्ति प्राप्त करोगे।



जिन प्रतिकूलताओं और विफलताओं से तुम घबड़ा जाते हो, तुम्हें पता नहीं है कि वे तुम्हारी गुप्त और सुप्त शक्ति को जागरित करने के लिये आती हैं। वे ही तुम्हारे आत्मविकास के उपयुक्त अवसर उपस्थित करती हैं। तुम हारो मत। प्राण रहते उनकी जीत मत मानो। अन्त में विजय तुम्हारी है; क्योंकि परमात्मा की सम्पूर्ण शक्ति तुम्हारे आवाहन की बाट जोह रही है।



आनन्द सत्संग पत्रक - 31

भाई मेरे, तुम व्यवहार तो सबसे ठीक करो। तुम्हारा व्यवहार तो हो धर्म के अनुसार, किन्तु तुम्हारी प्रीति के विषय हों सबमें रहने वाले भगवान्। क्योंकि प्रभु अविनाशी हैं, तुम्हें जन्म-मरण के चक्कर से छुड़ायेंगे। वे ज्ञान-स्वरूप हैं-तुम्हें बेवकूफी, नासमझी, अविद्या, अज्ञान, भ्रम से छुड़ायेंगे। वे आनन्द-स्वरूप हैं-तुम्हें दुःख से छुड़ायेंगे। वे अद्वितीय हैं-तुम्हें द्वैत के चक्कर से, राग-द्वेष के चक्कर से छुड़ायेंगे, आत्यन्तिक-निवृत्ति करेंगे। अतः भगवान् ही हमारे प्रेम के विषय हैं, भगवान् से ही हमें प्रेम करना चाहिए। लेकिन भगवान् से हमारा प्रेम साधारण नहीं, असाधारण होना चाहिए। जितनी भेदक या भेद-रूप वस्तुएँ हैं, उन सब में जो अभिन्न रूप से विद्यमान परमेश्वर है, उसके प्रति हमारे हृदय में भक्ति होनी चाहिए। भगवत्प्रेम हमारे व्यवहार का विरोधी नहीं है, वह तो व्यवहार को सँवारने वाला है। जब व्यापारी ग्राहक में भगवान् को देखेगा तो उसको धोखा नहीं देगा। व्यापारी ग्राहक में भगवान् को देखे अथवा ग्राहक व्यापारी में भगवान् को देखे-इसमें कोई भेद नहीं है। नारायण, हमारे भगवान् केवल अन्तःस्तल में छिपकर न बैठे रहें, हमारी आँखों के समाने आकर दिखें!



आनन्द सत्संग पत्रक – 32

भगवान् की याद हो तो ऐसी, जो करनी न पड़े। पल-पल में स्वयंप्रकाश हो। भगवान् जितना प्रेम करते हैं, उतना कोई किसी पर कर ही नहीं सकता। अपने को तो केवल कृतज्ञ ही होना चाहिये, यही प्रेम सबसे अच्छा है।



जो भगवान् को अपना बना लेते हैं और जिन्हें भगवान् अपना बना लेते हैं, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं। भगवान् ही एक ऐसे हैं जो हर समय, हर हालत में व हर देश में साथ रहते हैं। दुनियाँ के लोग तो प्रायः अच्छे समय तक या जब तक उनका कार्य हमसे पूरा होता दीखता है, तब तक ही साथ रहते हैं। अतः भगवान् को ही अपना हितैषी, परम सुहृद व परम मित्र समझना चाहिये।



जो भक्त सब कुछ त्यागकर भगवान् की शरण ग्रहण करता है, उसे भगवान् कभी नहीं छोड़ते, बल्कि उसके लिये तो वे भी पागल रहते हैं।



भगवान् के चरणों की शरण ग्रहण करने वाला कभी डूब नहीं सकता, उसका उद्धार अवश्य-अवश्य होता है।



आनन्द सत्संग पत्रक - 33

यदि आपको ऐसा प्रतीत होता हो कि मैं कर्त्ता-भोक्ता-परिच्छिन्न एवं संसारी जीव हूँ, पाप-पुण्य, सुख-दुःख, आना-जाना आदि विभिन्न भावों से आक्रांत हूँ तो आप मेरी बात मानिये। अपना चरित्र शुद्ध कीजिये। मन की वासनाओं को मिटाइये और मन को शांत हो जाने दीजिये। शांति में ही विवेक का उदय होता है। विवेक से वैराग्य होता है। वैराग्य के छः विलास हैं-

1. मन में काम-क्रोधादि दोषों का न उठना।
2. विहित भोग-विलास में भी अरुचि होना।
3. विहित कर्म से भी उपराम होना।
4. बिना चिन्ता-विलाप के दुःखों को सहना।
5. अपनी बुद्धि का अभिमान छोड़कर वेदान्त और सद्-गुरु पर श्रद्धा रखना।
6. मनोराज्य की निवृत्ति।

इतना वैराग्य होने पर भी यदि किसी भी लौकिक-अलौकिक दृश्य-वस्तु, क्रिया, भाव अथवा स्थिति में आसक्ति शेष रह जाती है तो मोक्ष मार्ग पर चलना नहीं हो सकता। इसके लिये सम्पूर्ण ऐन्द्रियक, मानस एवं आविद्यक बन्धनों से मोक्ष प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा अपेक्षित होती है।



आनन्द सत्संग पत्रक - 34

दुनियाँ अपना काम कर रही है-शरीर बैठा है-प्राण चल रहे हैं-मन संकल्प कर रहा है-बुद्धि जान रही है-और तुम! तुम अचल हो। संसार के तीन स्वर हैं-

मूढ़ (ज्ञानहीन, स्थिर=तमोगुण)

घोर (चल, विक्षिप्त=रजोगुण)

शान्त (वृत्तियों की निश्चलता=शुद्ध सत्त्वगुण)

ये तीनों प्रत्येक समय अपना काम करते रहते हैं-तुम इनके भी भीतर-इन सबसे महान्-इन सबके साक्षी-स्वरूप से ही निःसंकल्प हो। मन की निःसंकल्पता तो बनावटी है। वह अभ्यास के द्वारा वर्षों की बनायी जा सकती है; परन्तु टूटेगी। तुम सच्ची निःसंकल्पता को जानो। तुम्हें मालूम होगा, वह तुम्हें पहले ही स्वतः प्राप्त है। तुम जो उसे अप्राप्त मानकर पाना चाहते हो इसी से प्राप्ति नहीं होती। समुद्र की ऊपरी सतह पर चाहे जितनी तरंगें उठ रही हों-ज्वार-भाटा आ रहा हो, भीतर तो वह शान्त ही है। तुम जब बाह्य वस्तुओं को अपना स्वरूप समझकर बैठते हो, तभी विक्षेप और अशान्ति का अनुभव होता है। उन्हें देखकर मिटाने की चेष्टा मत करो। उनकी ओर से आँख बन्द कर लो। तुम्हारी अपनी सत्ता महासमुद्र है।



आनन्द सत्संग पत्रक – 35

सब व्यक्ति मनुष्य-पशु-पक्षी-वृक्ष-पाषाण आदि अपने-अपने स्वभाव के अनुसार बरत रहे हैं एवं राग-द्वेष-शयन-भोजन-भाषण आदि कर रहे हैं। ईश्वर उनको सत्ता देकर मजा ले रहा है। तुम केवल देख रहे हो। न देखो तो समाधि दीखती है, देखो तो ईश्वर की लीला दीखती है। अपना आपा ईश्वर के आपे से अलग नहीं है। सब एक हैं। सब परमात्मा है। सब आत्मा है। यही सत्य है-सो तुम हो। सहज ही समाधि है। लगाओ मन! केवल देखो! जब चित्त की निःस्पन्दता में ही जगत् नहीं है तो तत्त्व की अनन्त निःस्पन्दता में जगत् कहाँ से?



आनन्द सत्संग पत्रक - 36

अभिमान बुरी वस्तु नहीं है-उसका उपयोग बुरा या भला होता है। अभिमान से किसी का तिरस्कार करना, उसे नीचा समझना, पाप करना बुरा है। अभिमान से श्रेष्ठ कर्म में, ध्यान में, साधना में लगना अच्छा है। असल बात यह है कि बिना अपने साधकपने के अभिमान के साधना ठीक बनती नहीं। व्यवहार में देहाभिमान-अन्तःकरण का अभिमान स्वीकार किये बिना कोई काम कैसे करेंगे? “यह मेरी देह है, मेरा मन है”-यह मैं-मैं करने वाला कौन है? मैं (अभिमान) ही तो! इसलिये, ‘मुझमें अभिमान नहीं है’-यही सबसे बड़ा अभिमान है। साधक तो निरभिमान हो ही नहीं सकता। ‘मैं यह साधन, यह नियम कभी नहीं छोड़ूँगा’-इस प्रकार का हठ तो अत्यन्त आवश्यक है। आज्ञापालन, प्रसन्नता या सेवा को दृष्टि में रखकर दृढ़ हो जाना चाहिये। जीवनभर के लिये-जन्म-जन्म के लिये एक ही व्रत।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे, मैं सेवक रघुपति पति मोरे।

जनम जनम लागि रगर हमारी, बरउँ सम्भु न त रहउँ कुमारी।



आनन्द सत्संग पत्रक – 37

असल में प्रीति हमारा स्वभाव है और उसको हम बहुत सीमित क्षेत्र में रखते हैं। इसलिये वह प्रीति गन्दी हो जाती है—कभी हमारा राग बन जाती है, कभी मोह बन जाती है, कभी हमको विक्षिप्त कर देती है और कभी मूढ़ बना देती है। इसलिये प्रीति का द्वार खोल देना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि आप प्रीति सबसे कीजिये—माँ से कीजिये, पिता से कीजिये, भाई से कीजिये, पत्नी से कीजिये, पति से कीजिये, परन्तु आपका परम प्रेम तो भगवान् से ही होना चाहिये। औरों से हो प्रेम, परन्तु भगवान् से हो परम प्रेम।



नारायण, आप सबसे प्रेम कीजिये, सबका नाम लीजिये, सबकी सेवा कीजिये; लेकिन सेवा अलग-अलग न होकर एक परमेश्वर की हो रही है—ऐसा ध्यान रखिये। फिर तो आपके सभी कर्म जनता-जनार्दन रूप परमात्मा की सेवा के लिए या आपके इष्टदेव परमात्मा की सेवा के लिए हो जाते हैं। और, इस प्रकार का भाव जब आपके हृदय में आता है तब उसका नाम भक्ति हो जाता है।



आनन्द सत्संग पत्रक – 38

बहुत से लोग सोचते हैं कि हमारा शरीर भले अमर न रहे, कीर्ति अमर रहेगी। इसके लिए वे धर्मशाला, कुआँ, तालाब, मन्दिर-स्कूल या अस्पताल बनवाते हैं। ये कार्य उत्तम हैं, इन्हें करना चाहिए; किन्तु यह समझना चाहिए कि लौकिक कार्यों से होने वाली कीर्ति अमर नहीं रहती। वह धीरे-धीरे लुप्त हो जाती है। पता नहीं कितने विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारी हुए और अब उनका नाम भी कोई नहीं जानता। नारायण, कीर्ति भी तत्त्व के आधार पर होने वाली ही स्थायी होती है। श्रीकृष्ण की कीर्ति उनके पृथ्वी पर रहते हुए जितनी थी, उससे आज कहीं अधिक है।



साधन का स्वरूप यह है कि तुम जो भी बनना चाहते हो, वैसा संग करो, वैसा चिन्तन करो। जिनको विवाह करना है, उन्हें विवाहित लोगों का साथ करना चाहिए। इससे उन्हें गृहस्थ जीवन में रहने की, बच्चों के पालन-पोषण की शिक्षा मिलेगी; इसी प्रकार यदि तुम चाहते हो कि हम भगवान् के वैकुण्ठ धाम में जाकर श्रीनारायण की चरण-सेवा करें तो आज ही से ध्यान करना प्रारम्भ कर दो कि शेषशायी नारायण के श्रीचरणों को गोद में लेकर तुम दबा रहे हो। श्रीराधाकृष्ण को ताम्बूल खिलाना चाहते हो तो अभी से ध्यान करो कि कल्पवृक्ष के नीचे युगल-

सरकार गलबहियाँ डाले खड़े हैं और सखी के रूप में उपस्थित होकर तुम ताम्बूल खिला रहे हो। तुम चाहते हो कि तुम पर मृत्यु की छाया न पड़े, तुम्हें दुःख न हो, तो आज से ही समत्व-दृष्टि को धारण करो। नारायण, जो बनना चाहते हो, उसके लिए अभी से प्रयत्न प्रारम्भ करो।



आनन्द सत्संग पत्रक – 39

एक सेठ ने मुनीम से कोई बुरा काम करने को कहा। बोले-‘मुनीम जी, काम तो बुरा है; किन्तु करना तो है ही।’

मुनीम ठहरा नौकर। स्वामी आज्ञा दे तो मना कैसे करें, अतएव स्वीकार कर लिया।

सेठ ने पूछा-‘कब करेंगे आप?’

मुनीम जी बोले-‘इकतीस जून को कर देंगे।’

उस समय तो सेठ जी ने ध्यान दिया नहीं; किन्तु जब जून का महीना बीत गया तो उन्होंने पूछा-‘मुनीम जी, आपने वह काम तो किया नहीं!’

मुनीम बोले-‘वह तारीख ही नहीं आयी।’

सेठ-‘फिर आपने ऐसी तारीख बतायी ही क्यों?’

मुनीम-‘क्षमा करें! बुरे काम के लिये ऐसी ही तारीख रखना चाहिये जो कभी न आये।’

गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।

मृत्यु ने केश पकड़ रखा है और सिर काटने ही वाली है, ऐसा मानकर धर्माचरण करे।

इसलिये धर्म करने का संकल्प हो तो उसे पूरा करने में देर नहीं करना चाहिये और कोई बुरा काम करना हो तो उसे टालते जाओ।



आनन्द सत्संग पत्रक - 40

आजीवन ब्रह्मचारी के लिये सबसे पहली बात यह है कि वह अपनी एक निष्ठा का निर्णय, निश्चय कर ले। उसे चार निष्ठाओं में से अपने लिये कोई एक चुन लेना चाहिये-

- (1) कर्म-यज्ञ-यागादि, वेदोक्त कर्मकाण्ड, अशिक्षा-निवारण, रोग-निवारण, स्वच्छता का प्रचार, लोगों में नैतिक जीवन की ओर रुचि उत्पन्न करना।
- (2) उपासना-गायत्री जप, नाम जप, देवाराधन, संकीर्तन, कथा-श्रवण, भक्ति के विभिन्न अङ्गों का अनुष्ठान।
- (3) योग-आसन, प्राणायामादि के द्वारा चित्तवृत्तियों के निरोध का अभ्यास।
- (4) ज्ञान-श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा आत्मसाक्षात्कार के लिये प्रयत्न।

इन चारों में से किसी एक को प्रधान और शेष को गौणरूप से धारण करना चाहिये। सभी निष्ठाओं में इन्द्रियसंयम, मनोनिरोध एवं सदाचारयुक्त मृदु व्यवहार की अपेक्षा है। किसी एक निष्ठा को स्वीकार किये बिना अकर्मण्यता-बेकारी आने का डर रहता है, जिससे मनमें विकारों के आ जाने की सम्भावना रहती है। निकम्मे आदमी का जीवन प्रमाद का घर होता है। लक्ष्य की प्राप्ति के लिये पूर्ण निश्चय और वज्र-कठोर दृढ़ता की आवश्यकता है। ईश्वर, आचार्य, शास्त्र एवं आत्मदेव की कृपा का संबल लेकर ही इस मार्ग पर अग्रसर होना चाहिये।



आनन्द सत्संग पत्रक - 41

देखो, दूसरे को हराकर जो खुश होना है और हारते समय जो अपने दिल-दिमाग में घबराहट आती है, इसका अर्थ है कि तुम्हारे हाथ में कोई स्थायी पूँजी नहीं है। आप समझिए-जैसे कोई आदमी जूआ खेल रहा हो और पैसा आवे तो खुश और जाए तो दुःखी। यह नहीं कि उसके घर में कोई पूँजी है, आवे कि जाए, बे-परवाह। ऐसा नहीं है। नारायण, जिसकी आत्मा में आनन्द की पूँजी होती है, आनन्द की रस-माधुरी-वहाँ चाहे कोई हराकर चला जाये कि चाहे कोई हारकर चला जाये-अपनी पूँजी तो अपने पास ही रहती है। आने-जाने वाली चीज पर जिसका व्यापार निर्भर करता है-शाम तक आया तब रोटी बनी और जिस दिन नहीं आया, उस दिन भूखे रह गए-ऐसे व्यापारी, व्यापारी नहीं होते हैं। चाहे हार जायें, चाहे हरा दें-यह तो बाहर की बात है। भीतर अपने चाहिए आनन्द की पूँजी। यह केवल किताब में लिखी बात नहीं होती है, हृदय में होती है।



आनन्द सत्संग पत्रक - 42

श्रीचैतन्य महाप्रभु जयन्ती पर विशेष

मुमुक्षु होकर संसार के बन्धन से मुक्त होने के लिए अथवा भुक्ति-मुक्ति दोनों प्राप्त करने के लिए, अथवा केवल मुक्ति प्राप्त करने के लिए जप बहुत उपयोगी है और उपयोगी ही नहीं, अत्यावश्यक है। और, आप किसी भी पन्थ से चलें, आप के लिए जप अनिवार्य है। क्योंकि नाम के सिवाय यह सृष्टि और कुछ नहीं है। यदि आप नाम का आश्रय लेंगे तो नवीन सृष्टि का निर्माण कर सकते हैं, जो प्राप्त सृष्टि है उसको हटा सकते हैं और सृष्टि के सटाने-हटाने से मुक्त होकर अपने स्वरूप में स्थित हो सकते हैं, परमात्मा से एक हो सकते हैं। इसलिए, इस शब्दमयी सृष्टि को कोई साधारण सृष्टि मत समझना। एक-एक अक्षर, एक-एक शब्द में ऐसी शक्ति है कि यदि आपका शरीर ठण्डा हो गया है तो उसमें गर्मी पैदा हो जाये और आपके शरीर की शक्तियों का ऊर्ध्वगमन होने लग जाये। लेकिन जो लोग दूर-दूर से ही इसके बारे में सोचते-समझते रहते हैं, वे दूर ही रह जाते हैं। 'जप' जप करके देखने का मार्ग है, आप किसी दिन निष्ठापूर्वक, विश्वास-पूर्वक भगवान् का नाम-जप करके देखिये तो!

श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज कहा करते थे- 'जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः।



आनन्द सत्संग पत्रक - 43

हमारे बड़े-बड़े जो वेदान्ती हैं, उनमें मूर्धन्य हैं श्रीमधुसूदन सरस्वती जी। इन लोगों ने निर्गुण-ब्रह्म का वर्णन करते हुए भी सगुण-साकार की महिमा का गान किया है। आपको सुनाते हैं कि श्रीमधुसूदन सरस्वती जी स्वभाव से बड़े नैयायिक थे और वेदान्त के अद्भुत विद्वान्। उन्होंने द्वैत-वादियों का बड़ा भारी खण्डन किया। पर खण्डन करते समय भी उनकी जो मधुरता है, मिठास है, वह बनी रहती थी। बात का खण्डन करना, लेकिन बोलते थे 'सखे' कहकर। यह नहीं कि जबान कड़वी हो गयी। बल्कि माध्व लोग कटु भाषण करते थे।

तो नारायण, यह जो बोलना है, यह भीतर भरी हुई वस्तु को बाहर निकालता है। जिसके भीतर कड़वाहट होती है, वह कड़वा बोलता है और जिसके भीतर माधुर्य होता है, वह हर हालत में मधुर ही बोलता है। भीतर इसके मिठास है कि कड़वाहट है-इसका पता चलने में लगता है, बोलने में लगता है, देखने में लगता है, छूने में लगता है। गन्दगी छिपी नहीं रहती, वह निकल आती है।



आनन्द सत्संग पत्रक - 44

मेरे मनकी रहे, तभी मैं खुश होता हूँ।
 तेरी इच्छापूर्ति देख निज सुख खोता हूँ।
 'मैं' की पूजा करूँ, नाम ईश्वर का लेऊँ।
 मन-तन में आसक्त, वचनसे सब कुछ देऊँ।
 प्यारे, यों ही चल रही, भक्ति बहुत ही दूर है।
 'मैं-मेरा' मारे बिना भक्त, ढोंग भरपूर है।



बनना कवि पर कभी दुःखके गीत न गाना।
 टीका करके कभी न मनमें व्यथा बुलाना।
 रहो हमेशा सरस प्रीतिकी रीति बढ़ाओ।
 तन मन धनके बिना प्रेमके फूल चढ़ाओ।
 दिलको कड़वा मत करो, रखो सदा रस घोल।
 सुनकर सब सुखमें सनें, बोलो ऐसे बोल।



आनन्द सत्संग पत्रक – 45

व्यक्ति में यदि शंका हो तो ईश्वर पर श्रद्धा और विश्वास करके अपना संशय काट देना चाहिये। यदि भगवान् में शंका हो तो तत्त्वज्ञानियों का संग करके तत्त्वजिज्ञासा द्वारा अपने संशय का छेदन करना चाहिये। संशय सबसे बड़ा दोष है-‘संशयात्मा विनश्यति’ इसलिये यदि अपने मन में किसी के प्रति सन्देह-अविश्वास आता हो तो उसे अपना ही दोष समझकर निराकरण का प्रयत्न करना चाहिये। अन्तःकरण में निश्चय का न होना बुद्धिहीनता का सूचक है।



संसारी लोग वस्तुतः अपनी वासना की बात मानते हैं, किसी और की नहीं। यदि कहा जाय कि अमुक व्यक्ति को अमुक वस्तु दो तो विचार करेंगे कि दें या नहीं। और यदि कहें कि मत दो तो बिना विचारे न देने का निश्चय कर लेंगे। वास्तव में मनुष्य में लोभ की वृत्ति ही न देने में हेतु है। दे देने में विकलता तथा वस्तु के चले जाने का दुःख भय दिखलाता है।



आनन्द सत्संग पत्रक - 46

सावधान, किसी व्यक्ति का सौन्दर्य अथवा उसके द्वारा निर्मित वस्तु का सौन्दर्य देखने की वासना अन्ततोगत्वा भोग में परिणत हो जाती है। इस नेत्रवासना ने बड़े-बड़ों को विकार के अग्निकुण्ड में झोंक दिया है। नेत्रवासना ने केवल पतिंगे को ही भस्म नहीं किया, बड़े-बड़े विद्वानों, योगियों, और सदाचारियों को भी पतन के गड्ढे में ढकेलकर सर्वनाश तक पहुँचा दिया। इसपर विजय प्राप्त करने के लिये बहुत जागरूक रहना चाहिये। मन-ही-मन चाम का पर्दा हटाकर तब व्यक्तियों को देखना चाहिये। स्त्री मात्र में जगज्जननी जगदम्बा को ही देखना चाहिये। अपने इष्टदेव की अनुपम रूप-माधुरी का प्रेम से चिन्तन करना चाहिये। अन्तःसौन्दर्य की अनुभूति, ईश्वरीय सौन्दर्य का अनुसन्धान और प्राकृत सौन्दर्य के निरीक्षण से व्यक्तिगत सौन्दर्य का आकर्षण एवं प्रलोभन नहीं रह जाता। सौन्दर्य का सच्चा स्वरूप निर्विकारता है, यह बात ध्यान में रहनी चाहिये।



जो इन्द्रियों के द्वारा बाह्य विषयों के भोग और चिन्तन से मुक्त होने के लिये प्रयत्नशील हो, वह साधक है। साधक को अपने भीतर ही खुश रहने की हमेशा कोशिश करनी चाहिये।



आनन्द सत्संग पत्रक - 47

सवाल यह है कि सत्सङ्ग को किस ढङ्ग से अपने जीवन में ढाला जाये कि जीवन में मुमुक्षा आ जाये ?

नारायण, मुमुक्षा का अर्थ केवल छूटना-ही-छूटना नहीं होता है। मुमुक्षा का अर्थ होता है-सब प्रकार से निखिलानर्थ निवृत्तिपूर्वक परमानन्द की प्राप्ति-माने अनर्थ से छूटना और साथ-ही-साथ परमानन्द की प्राप्ति करना। और, इसमें हेतु है महापुरुष का संश्रय-सत्सङ्ग। कहते हैं कि वृत्रासुर ने तो यहाँ तक कहा कि प्रभु, चाहे जितने भी सृष्टि-प्रलय हों और चाहे जितने भी हमारे जन्म हों, परन्तु हमको जन्म-जन्म में, जो महानुभाव पुरुष हैं, सद्भावयुक्त महापुरुष हैं, उनका सङ्ग प्राप्त हो। इसका अर्थ हुआ कि हमारी 'कम्पनी' अच्छी रहे। हमारी 'सोसायटी' अच्छी रहे। हम कहीं बुरी सोसायटी में पड़कर अपनी बुद्धि को नष्ट न कर बैठें, अपने चरित्र को नष्ट करने वाली जो वस्तुएँ हैं, उनका सेवन न करने लग जायें, उनमें न उलझ जायें, हमारा हृदय न उजड़ जाये। सब खजानों का खजाना हमारा हृदय है और यह हमेशा सुरक्षित रहना चाहिये। हृदय हमारे जीवन में सत् को, ज्ञान को, आनन्द को धारण करता है। इसी में सत्य का अनुभव होता है, इसी में पूर्णता का ज्ञान होता है, इसी में परमानन्द का अनुभव होता है।



आनन्द सत्संग पत्रक - 48

श्रीवल्लभाचार्य जयन्ती पर

प्रिय.....,

सप्रेम शुभाशीर्वाद।

मैं जानता हूँ कि तुम अपने आराध्यदेव कृष्ण की पूर्ण कृपा और प्रेम के अधिकारी हो और प्रतिदिन ही तुमको कुछ-न-कुछ ऐसा अनुभव होता होगा-एक दिव्य शक्ति तुम्हारी रक्षा कर रही है। वह हर समय तुम्हारे साथ रहती है। खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते वह कभी तुमसे अलग नहीं होती। जब तुम्हारे मनमें एकान्त में कोई बुराई आती है, वह उसे भी जानती है और जब तुम पश्चाताप की ग्लानि से जलने लगते हो, तुम्हारे साथ ही तकलीफ भी पाती है। वह तुम्हारे रोम-रोम में व्याप्त और मनकी एक-एक वृत्ति से परिचित है। वह केवल तुम्हारे लिये है, तुम्हारे साथ है और तुम्हें अपने उज्ज्वल प्रेम से सराबोर कर रही है।

अगर कभी मनमें किसी बात का अभिमान आये तो वह ऐसा होना चाहिये-कि अपना इष्टदेव मुझपर कितनी कृपा और प्रेम करता है!



आनन्द सत्संग पत्रक - 49

अक्षय-तृतीया के पावन पर्व पर

मन सफल भगवान् के ध्यान से। बुद्धि सफल भगवान् के ज्ञान से और आँख सफल भगवान् के स्वरूपदर्शन से। जो मन बिना आँख के भगवान् का दर्शन कर सकता है, वही मन आँख के रास्ते भी भगवान् के दर्शन कर सकता है। यह कोई अवैज्ञानिक बात नहीं है। दुःख तो इस बात का है, मनुष्य नाना कामनाओं के जाल में उलझा है। मन उनमें फँसा है तो ईश्वर की ओर कैसे जाय? ईश्वर से राग कैसे हो? करना केवल इतना है कि सौ मंडराती हुई इच्छाओं में भगवत्प्राप्ति की एक इच्छा मिला दो। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि सबके सब श्रीकृष्ण से प्राप्त हो जायेंगे। सौ की सौ पूरी हो जायेंगी, मिट जायेंगी और तुम इच्छाहीन हो जाओगे। पूर्ण को प्राप्त कर लोगे, पूर्ण हो जाओगे।



दिल का शीशा श्रीकृष्ण की विरहाग्नि में डालकर गलाओ और फिर श्रीकृष्णाकाराकारित कर दो। स्त्री-पुत्रादि आकारता अपने आप मिट जायेगी। नारायण, जब तक ईश्वर के लिये हृदय में विकार नहीं आता, संसार का विकार नहीं मिट सकता। घबराना नहीं।



आनन्द सत्संग पत्रक - 50

आद्य शङ्कराचार्य जयन्ती पर

Wednesday 9th January 1957

तत्त्वविचार की कुछ विशिष्ट दृष्टियाँ हैं —

- १- कार्यकारण-परम्परा के विचार से जगत् का मूल सत् है।
- २- कर्मफल-परम्परा के विचार से पूर्व-सृष्टि के संस्कार, इच्छा, प्रयत्न, सुख-फल पुनः संस्कार-सुख।
- ३- दृश्य-द्रष्टा के विचार से सर्वविधासद-स्वयम्भुकाश नित्।

यह तीनों मत शून्यवाद के विरोधी हैं, ६ परन्तु विशेषरूप से। दूसरा मुख्य रूप से नान्य कारणवाद का विरोधी है और तीसरा जडकारणवाद का।

द्रष्टा से दृश्य की उत्पत्ति मानने पर जगत् से जगत् की उत्पत्ति = जड की उत्पत्ति माननी पड़ेगी। द्रष्टा दृश्य का प्रकाशक तो है परन्तु उत्पत्ति नहीं। शान यथास्थित वस्तु को दिखाता मात्र है दृष्टि के बिना दृश्य की सिद्धि ही नहीं है। सब दृश्य दृश्य-त्वेन एक हैं वह दृष्टि से भिन्न नहीं। और वीच से दृष्टि ही पराग्रूप से दृश्य और प्रत्यग्रूप से द्रष्टा का रूप में भासती है। प्रत्येक और पराग्रूप का भेद दृष्टिक = भक्ति है। निष्कर्ष —

- ४- द्रष्टा का कोई कार्य (पुनः प्रकाश) नहीं है।

अरविन्द (राम)



आनन्द सत्संग पत्रक - 51

श्रीरामानुजाचार्य जयन्ती पर

प्रश्न-हमारा शरीर प्राकृत है, अन्तःकरण भी प्राकृत है और भगवान् का शरीर अप्राकृत। प्राकृत से अप्राकृत का चिन्तन कैसे होगा ?

उत्तर-जब भगवान् की स्वरूपभूता, अन्तरंगा, आह्लादिनी भक्ति जीव के अन्तःकरण में स्वयं प्रकाश रूप से अवतीर्ण होती है, तब वह अपने रस से रसायनीकरण करके उसको अप्राकृत बना देती है। भक्ति कहते ही उसे हैं जो अपने विषय और आश्रय दोनों को अप्राकृत कर दे।

सिद्धान्त यह है कि एकमात्र भगवान् ही तत्त्व हैं। प्रकृति और प्राकृत आगन्तुक हैं, कल्पित हैं। जब निरन्तर भगवच्चिन्तन से बुद्धि होकर भगवत्तत्त्व का आंकलन करती है, तब प्रकृति-प्राकृत का लोप हो जाता है और भगवत्तत्त्व का साक्षात्कार होकर यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि प्रकृति-प्राकृत कुछ नहीं है, भगवान् ही हैं। गम्भीरता और निपुणता से निरीक्षण करने पर क्या रज्जु का दर्शन सर्प-भ्रान्ति की निवृत्ति नहीं करता ?



भक्ति सिद्धान्त में आवरण नामका कोई दोष नहीं है। भक्त और भगवान् के बीच कोई पर्दा नहीं है! अपने विक्षेप, चित्त की चंचलता के कारण ही हम उसे देख नहीं पाते। उसे देखने के बदले अन्य पदार्थों पर दृष्टि अटक जाती है, तभी उसका दीखना रुक जाता है। भगवान् और हमारे बीच में न दूरी है, न देरी। ईश्वर के बदले पैसा-पुत्र-शरीर पर दृष्टि ही विक्षेप है। इसे ही आवरण कह लो। अपना अभिमान कम करके हृदय में झाँको, बिना दूरी, देरी के वह दीखेगा।



आनन्द सत्संग पत्रक – 52

वास्तव में भगवान् परिपूर्ण ही हैं। उन्हें कोई देश, काल, वस्तु, गुण, रूप आदि अप्राप्त नहीं हैं। न वे कुछ चाहते हैं, न बनते हैं। वे सब कुछ पहले से ही हैं। भक्त लोग जैसा चाहते हैं वैसे दीख जाते हैं। ऋणी और उऋण दोनों वही हैं। ऐसा होने पर भी साधारण भक्त उन्हें ऋणी बनाने की नहीं सोच सकते। अत्यन्त प्रेमी, जो गोपियों की भूमिका में पहुँचे हुये हैं, उन्हें नीचा दिखाना चाहते हैं। और, चूंकि नीचा देखे हुए भी वही हैं, इसलिए दीख जाते हैं। सच पूछो तो भाई, भगवान् शुद्ध प्रेम हैं। दूसरे जो प्रेमी हैं, उनमें तो उन्हीं के किञ्चित् प्रेमांश का विकास होता है, इसलिये उन जैसे तो वही हैं। जीव प्रेमी नहीं, ईश्वर ही सच्चा प्रेमी है। उसके प्रेम के सामने कृतज्ञ होने में ही जीव का कल्याण है, अपने को प्रेमी मानने में नहीं। यह कितनी सुन्दर बात है कि जीव ईश्वर का प्रियतम है!



आनन्द सत्संग पत्रक – 53

अरे मन, तू जिस विषय का चिन्तन करने जा रहा है, क्या उससे सुन्दर और कुछ है ही नहीं? क्या ईश्वर और आत्मा भी तुम्हें प्यारे नहीं लगते? तब और का चिन्तन क्यों? शान्त स्थिति से उदासीनता क्यों? मेरे प्यारे पवित्र मन! आओ, सबसे श्रेष्ठ परमानन्दस्वरूप परमात्मा में स्थिर हो जाओ। मेरे प्यारे दोस्त, तुम कितने अच्छे हो कि पवित्र शान्त आत्मा में स्थित हो रहे हो!

नारायण, आप अपने मनको जैसा बनाना चाहते हैं, वैसा देखिये। वह उसी समय आपको वैसा दीखेगा। सच पूछो तो देखने के सिवा और मन है ही क्या? यदि यह बात आपके ध्यान में आ गयी तो तत्क्षण आप मनसे स्वतंत्रता का अनुभव करेंगे।



आनन्द सत्संग पत्रक – 54

प्रश्न-जब शास्त्रों में मंत्र व उनकी विधि लिखी हुई है तब दीक्षा लेने की आवश्यकता क्यों होती है ?

उत्तर-शास्त्रों में मंत्र हैं, सो तो ठीक, पर उसके मालिक उसके हकदार सिर्फ सन्त-महात्मा ही हैं, न कि शास्त्र। अतः जब वे कृपा कर उसे दें तभी उसे लेना चाहिये और तभी वह अपने लिये उपयोगी सिद्ध हो सकेगा। जैसे, कहीं पड़ी मुहरों की थैली हमारी नहीं हो सकती, हम उसे अपने पास सुरक्षित नहीं रख सकते, पर यदि उसका मालिक अपनी मर्जी के अनुसार उसे हमें दे देता है तो हम उसके अधिकारी हो जाते हैं और उसे उपयोग में भी ला सकते हैं, ठीक ऐसा ही मंत्र-दीक्षा के सम्बन्ध में है।

प्रश्न-अनन्य भक्त कौन ?

उत्तर-जो आठों पहर अन्तर्मुख रहता हो ! सच पूछो तो जीव में तो भगवान् के भजन करने की शक्ति ही नहीं है। जो कुछ होता है, उनकी दया से ही होता है। अतः यही चिन्तन रहना चाहिये कि मैं भजन नहीं करता, बल्कि भगवान् ही मेरा भजन करते हैं। उनका अनुग्रह देखकर ही हृदय आनन्द से सराबोर रहे।



आनन्द सत्संग पत्रक - 55

यदि केवल व्यवहार की दृष्टि से देखा जाये तो भी यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि जीव बड़े कृतघ्न हैं। जिन्होंने हमें प्रलय की घोर निद्रा में से जगाया, जिन्होंने हमें समझने-बूझने की बुद्धि दी, जिन्होंने हमें मनुष्य बनाया, जिनकी कृपा-दृष्टि से, जिनकी शक्ति से हम जीवित हैं, जिनकी गोद में हैं, जो एक क्षण के लिये भी हमें अपनी आँखों से ओझल नहीं करते, उन्हीं परमपिता, परम कारुणिक, सर्वशक्तिमान् प्रभु को भूलकर हम विषयों का चिन्तन करते हैं। जगत् के तुच्छ जीवों की सेवा करते हैं, उनके सामने कुत्तों की भाँति चापलूसी करते फिरते हैं। जिनका सबकुछ है, उनसे तो हमने कुछ नाता ही नहीं जोड़ा, उन्हें तो भुला ही दिया। नाता जोड़ा उन लोगों से, याद किया उन लोगों को जो हमें धधकती हुई आग में जलाने को तैयार रहते हैं। इतना सब होने पर भी परम दयालु प्रभु हमारी भूलों पर दृष्टि नहीं डालते वे स्मरण करते ही आ जाते हैं, एक पग चलते ही सौ पग दौड़ आते हैं। यहाँ तक कि कोई उनका अनिष्ट करने भी उनके पास जाय तो वे उसकी भलाई ही करते हैं। नारायण, मैं सोच भी नहीं सकता कि इतने कृपालु प्रभु को छोड़कर हमलोग दूसरों का चिन्तन-स्मरण क्यों करते हैं, परन्तु करते हैं यह सच्ची बात है। सत्य तो यह है कि चिन्तन-स्मरण न करने वालों का भी प्रभु ध्यान रखते हैं तो जिन्होंने सम्पूर्ण विषयों से अपना मन हटा लिया है, उनका वे कितना चिन्तन करते होंगे, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता।



आनन्द सत्संग पत्रक - 56

निर्विकार अन्तःकरण के अच्युत तत्त्व में स्थित हो जाने से विषय सम्बन्धी सारे विकार स्वयं ही दूर हो जाते हैं। निर्विकार अन्तःकरण की जो अपने सद्घन, चिद्घन, और आनन्दघन आश्रय से अभिन्न स्थिति है, वही शुद्धि है; क्योंकि उसमें वृत्ति और विषय का मिश्रण नहीं है। मिश्रण ही अशुद्धि है। चित्त में जितने भी दोष, दुर्गुण, अशुद्धि, विकार होते हैं, उनमें कोई-न-कोई विषय वृत्ति के गर्भ में विद्यमान रहता है; यथा काम में कामिनी, क्रोध में शत्रु, लोभ में धन इत्यादि। परन्तु सत्य, अहिंसा, निष्कामता, निर्लोभता आदि सद्-गुणों में अन्तःकरण सर्वथा निर्मल एवं निर्विषय रहता है। उस समय वृत्ति अपने शान्त आश्रय से भिन्न करके अपने को नहीं दिखाती। वृत्ति की सत्तामात्र स्थिति ही सद्-गुण है।

अतः संयम, सरलता, सादगी, समता, सत्यता, सदाचार आदि सद्-गुण स्वाभाविक ही जीवन में उतर आते हैं। बाह्य वस्तुओं में सुखबुद्धि न रहने के कारण अन्याय से संग्रह-परिग्रह का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। भोगलिप्सा से उत्पन्न होने वाली हिंसा स्वतः निवृत्त हो जाती है। किसी वस्तु के नाश का भय नहीं रहता। छोटे-से-छोटे कार्य में भी दैवी सम्पत्ति के महान् गुणों का प्राकट्य होने लगता है। जीवन में से दुराग्रह मिट जाता है। उसके शरीर के कण-कण, रोम-रोम, रग-रग विश्व-हित; भगवत्प्रेम और आत्मज्ञान से परिपूर्ण रहते हैं तथा उनकी ऐसी रश्मियाँ एवं धाराएँ बिखरती रहती हैं, जिनसे सम्पूर्ण विश्व प्रेम से परिलुप्त हो जाय।



आनन्द सत्संग पत्रक – 57

केवल ईश्वर मान लेने से या उसका निश्चय कर लेने से ही कोई भक्त या प्रेमी नहीं हो जाता। जब संयोग का स्वाद और वियोग का दुःख होता है तब प्रेम रसायन परिपक्व होता है। रसायन बनाने के लिये कभी आँच देनी पड़ती है, कभी ठण्डा। अपने इष्ट से जब विरह की भावना होती है, क्षण-क्षण वेदना बढ़ती है। कभी मृत्यु का भी दर्शन होता है; परन्तु कभी इसी व्याकुलता में ऐसा ध्यान हो जाता है कि विरह से ही मानों संयोग निकल आया हो। प्राण तृप्त हो जाते हैं, नस-नस तर हो जाती है, आँखें आनन्द रस से पूर्ण। यह हमारा अनुभव है। जब कभी स्वस्थ मन से सोचते हैं-ऐसा ध्यान के बाद खास करके मिलन की रसानुभूति के बाद ही होता है-तब स्पष्ट मालूम पड़ता है कि हमारे इष्ट की हित भावना ही संयोग का अमृत और वियोग की कड़वाहट-दोनों ही लेकर आती है और वह हमारे हृदय को अपने साँचे में ढाल रही है। किसी नव निर्माण में कुछ हथौड़े-टाँकी की चोट जरूर खानी पड़ती है! बिना घिसे, बिना पिटे हीरा सुझौल हुआ है? जो दुःख और पीड़ा से घबराता है-ऐसे बुझदिल को अपने इष्टप्रेम के पथ पर पाँव रखने का कोई हक नहीं है।



आनन्द सत्संग पत्रक – 58

अपने तो उसके इशारे पर नाचने वाले हैं। जैसे, जब जहाँ रखे, वहीं रहने को तैयार। ब्रज के प्रेमी कहते हैं-‘जैसे राखहु वैसे रहों।’ अपने प्रभु की इच्छा से नरक में रहना भी अच्छा है। अपनी वासना की पूर्ति के लिये स्वर्ग में रहना भी स्वार्थ है।

प्रेमी की रीति बड़ी निराली है नारायण! देखो, मीन का जीवन जल के अधीन है, जल के बिना वह मर जाती है! ठीक है, परन्तु वह जल में रहकर जल का रसास्वादन कितना करती है? अंग-अंग, रोम-रोम से डूबी हुई होने पर भी उसकी रसवृत्ति दूसरी ओर अपने भोग्य-पदार्थ सम्बन्धी आदि में चली जाती है। इसके विपरीत मधुकर-भ्रमर रसस्वादी है, पुष्परस में आसक्त है; परन्तु वह पराधीन नहीं है। मीन में आस्वादन और मधुकर में अधीनता की न्यूनता है। मधुकर अनन्य रसिक नहीं और मीन अनन्य होने पर भी रसिक नहीं। अब यदि राधाकृष्ण के प्रेम के स्वरूप को समझना हो तो हमें दोनों बातें मिला देनी पड़ेंगी। श्रीराधारानी मधु हैं, तो श्रीकृष्ण मधुकर। ठीक है, परन्तु उनका जीवन मीन के समान ही अधीन भी है। निमेष-मात्र के लिये भी परस्पर अलगाव उन्हें स्वीकार्य नहीं। एकरस मिलन और रस-मधु का आस्वादन ही उनका जीवन है।



आनन्द सत्संग पत्रक - 59

प्रश्न-कृपया यह बतलाइये कि ब्रह्म ही सबका आत्मा है तो सब समय यह क्यों नहीं भासता कि मैं ब्रह्म ही हूँ? 'मैं मनुष्य हूँ' इत्यादि प्रतीति क्यों होती है?

उत्तर-आपका प्रश्न ठीक है। उपाधि से आत्मा का विवेक न होने के कारण जो भ्रम है, उसी से ऐसा होता है। अतः आइये, उपाधि का अपवाद करके त्वं-पदार्थ का शोधन कर लिया जाये। जैसे कोई लकड़ी, लौह आदि स्थूल-पदार्थों में अग्नि का संकल्प करके उसमें 'अग्नि-बुद्धि' कर बैठता है, वैसे ही अविवेकी जीवों ने देह, इन्द्रिय आदि पदार्थों से आत्मा का विवेक न करके अपने को वही-वही मान लिया है। अन्नमय कोष में आविष्ट होकर अपने को स्थूल-कृश, बालक-युवा, काला-गोरा, ब्राह्मण-संन्यासी आदि मान बैठता है। प्राणमय कोष में अपने को मिलाकर 'मैं जी रहा हूँ, भूखा हूँ, प्यासा हूँ'-ऐसा मानता है। मनोमय में मिलकर अपने को संशयी, निश्चयी मानता है। विज्ञानमय कोष में 'मैं ठीक जानता हूँ'-यह अभिमान होता है। जब यह आनन्दमय में अहंकार कर बैठता है तब पुण्यकर्म या उपासना के फल का अपने में आरोप करके अपने को सुखी मानने लगता है। जैसे किसी ने पाँच कंचुकी पहन रखी हो, वैसे ही इन पाँच कोषों का परिधान धारण करके व्यापक परमेश्वर भी परिच्छिन्न के समान भासने लगता है। वस्तुतः ये सब उपाधि-धर्म हैं, आत्म-धर्म नहीं-यह अनुभूति दृढ़ होनी चाहिए।



आनन्द सत्संग पत्रक – 60

संसार में अनेकों प्रकार के सुख दीखते हैं। उन्हें बहुत रूपों में देखा जा सकता है। शारीरिक, ऐन्द्रियक, आन्तरिक, बौद्धिक आदि उनके भेद हो सकते हैं। इस जगत् में जिन्हें सबसे अच्छी स्थिति प्राप्त होती है, उन्हें यही सब सुख मिलते हैं। शरीर बलवान् हो, इन्द्रियाँ नीरोग एवं विषयों का सुख भोगती हों। धन, परिवार, साम्राज्य, मान, प्रतिष्ठा आदि से मन संतुष्ट हो, बुद्धि को विविध वस्तुओं के विज्ञान का बोध हो, राजनीति, समाजनीति आदि में पटुता प्राप्त हो, सब लोग उसकी सम्मति मानते हों तो सांसारिक दृष्टि से कहा जा सकता है कि वह व्यक्ति सुखी है; परन्तु सुख की पूर्णता यही नहीं है। इन सब वस्तुओं के साथ, चाहे व वस्तुएँ भोगे जाने वाले विषयों के रूप में हों या भोगने वाले करणों या करणों के अभिमानियों के रूप में हों, मृत्यु लगी हुई है। देवताओं के प्रसाद से इच्छा-मृत्यु भी प्राप्त हो सकती है, परन्तु उसके प्राप्त होने पर भी सुख की सीमा नहीं मिलती। विचार करने पर ऐसा जान पड़ता है कि यदि कदाचित् किसी प्रकार संसार की उपर्युक्त वस्तुएँ स्थायी रूप से प्राप्त हो जायँ और मृत्यु भी अपने हाथों में आ जाय तो भी कुछ-न-कुछ कमी बनी ही रहती है, कुछ-न-कुछ अभाव खटकता ही रहता है। इन सब वस्तुओं के पाने पर भी कुछ पाना शेष रह जाता है। संतों ने, शास्त्रों ने इस तत्त्व पर प्रारम्भ से ही विचार किया है और बड़े सौभाग्य की बात है कि वे इस विषय में सहमत हैं कि इन बाह्य वस्तुओं से शान्ति नहीं मिल

सकती, ये संसार के सुख तुच्छ सुख हैं, क्षणिक सुख हैं। इनमें सुख-शान्ति की आशा करना मरुस्थल में प्रतीयमान जल से प्यास बुझाना है। न आजतक इनसे किसी को सुख हुआ है न होने की आशा है।

तब प्रश्न यह होता है कि अन्ततः सुख-शान्ति है कहाँ? इसका उत्तर एक ही है, वह यह कि अन्तःस्तल के भी अन्तर में विराजमान आत्मा के भी आत्मा आनन्दकन्द सच्चिदानन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को जाना जाय, प्राप्त किया जाय और उनके पास ही पहुँचा जाय। उन्हीं को प्राप्त कर लेने पर इन विषय-सुखों के क्षुद्र बिन्दु का अनन्त महासागर प्राप्त हो जाता है। तात्पर्य यह कि बुद्धि से भगवान् श्रीकृष्ण को जाना जाय, मन उन्हें ही प्राप्त कर ले और इन्द्रियाँ उन्हीं के पास पहुँच जायँ। वास्तव में तब हम सब कुछ प्राप्त कर सकेंगे।



आनन्द सत्संग पत्रक - 61

महापुरुषों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वे ऊपर से चाहे जिस काम में लगे हों, हृदय में भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण किया करते हैं! चाहे भयंकर-से-भयंकर रूप धारण करके भगवान् उनके सामने आवें, वे भगवान् को पहचान जाते हैं। एक क्षण के लिये भी उनके मानस-पटल से मधुरमूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण की छवि नहीं हटती। उनके अन्तस्तल में एक भी ऐसी वृत्ति नहीं होती जो भगवान् के माहात्म्य ज्ञान से शून्य हो। भगवान् की स्मृति ही महात्माओं का जीवन है, भगवान् की स्मृति ही महात्माओं का प्राण है और वास्तव में वे हैं ही भगवत्स्मरण, स्मरण से पृथक् उनकी सत्ता ही नहीं है। महाभारत में प्रसंग है भीष्म पितामह का-जिनको संसार से कोई मतलब न था। संसार में रहते हुए, अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हुए युद्ध में भी उन्होंने भगवान् का स्मरण किया। मारने वाले वेश में भी भगवान् को पहचाना। जब वे बाण शय्या पर पड़े हुए थे, उनके शरीर में दो अँगुल भी ऐसी जगह नहीं जिसमें बाण न धँसे हों। तब क्या वे अपने शरीर, बाण अथवा पीड़ा की याद करते होंगे! नहीं-नहीं, उन्हें और किसी बात का स्मरण नहीं था; वे केवल भगवान् के स्मरण में ही तन्मय थे, निरन्तर भगवान् के चिन्तन में ही संलग्न!

